कुछ ईंटें, कुछ प्रमेय और कुछ निष्कर्ष

रामकृष्ण भट्टाचार्य

इस समापन किश्त में कुछ विशेष ईंटों और प्रमेयों की चर्चा है। साथ ही प्राचीन भारत में ज्यामिति के विकास और शुल्व सूत्रों के निहितार्थों पर कुछ टिप्पणियां।

▪मनें कई मर्तबा उल्लेख किया है कि शुल्व सूत्र मूलतः विभिन्न आकार व आकृतियों की ईंटों से सम्बंधित हैं। इन ईंटों में से कई के अपने नाम हैं। कुछ ईंटें तो काफी व्यावहारिक डील-डौल की हैं किंतु कुछ बहुत विचित्र हैं। आइए इनकी एक सूची बनाई जाए।

ईंटों की नाप

शुल्व ग्रन्थों में सौ से अधिक प्रकार की ईंटों का उल्लेख है, अधिकांश (कम से कम 90) के तो विशिष्ट नाम हैं। हालांकि कई मामलों में अलग-अलग आकार-प्रकार की ईंटों को एक ही नाम दे दिया गया है। बौधायन शुल्व सूत्र में बृहति ईंट का ज़िक्र है जिसका उपयोग प्रउग चिति के निर्माण में किया जाता था। यह एक आयताकार ईंट है ($10\sqrt{5} \times 5\sqrt{5}$ वर्ग अंगुल)। यही नाम उभयतः प्रउग चिति में प्रयुक्त होने वाली उस ईंट के लिए भी है जिसकी दो भुजाएं 36.5 व 18.25 अंगुल लम्बी हों। और इसी ईंट को अध्यर्धा के नाम से भी पुकारा जाता है। अब अध्यर्धा का शाब्दिक अर्थ होता

है 'एक अतिरिक्त अर्ध युक्त' अर्थात डेढ़ ($1\frac{1}{2}$)। अर्थात अध्यर्धा (अथवा अध्यर्धा) नाम को एक वर्गाकार ईंट से तुलना करके समझना होगा (वर्तमान संदर्भ में 20×20 वर्ग अंगुल यानी षष्ठी ईंट)। दूसरी ओर कात्यायन शुल्व सूत्र में बृहति का अर्थ एक अन्य वर्गाकार ईंट (24×24 वर्ग अंगुल) है। इसे पंचमी (पुरुष का $\frac{1}{5}$) भी कहते हैं।

पाद (या पाद्या) नाम को भी एक अपेक्षाकृत बड़ी ईंट से तुलना के संदर्भ में ही समझना होगा। पाद ईंट उस बड़ी ईंट का चौथा हिस्सा है यानी अर्ध, अध्यर्धा या पाद जैसी ईंटों के मामले में पहले हमें उस मूल ईंट का आकार पता करना होगा जिसे आधा, ड्योढ़ा या चौथाई किया गया है।

कुछ ईंटों के आकार व आकृति तो दी गई हैं मगर उन्हें नाम नहीं दिए गए हैं। आपस्तम्ब में 9 अलग-अलग किस्म की ईंटों का ज़िक्र है किन्तु इन्हें नाम नहीं दिए गए हैं। इसी प्रकार से वृत्ताकार चितियों के निर्माण में 20 प्रकार की ईंटों का इस्तेमाल होता है। इन ईंटों के दो फलक वक्रता लिए होते हैं जबकि अन्य दो फलक सीधे होते हैं। इन ईंटों को कोई नाम नहीं दिया गया है। दिलचस्प बात यह है कि लगभग कोई भी नाम चारों रचनाओं में समान नहीं है। बृहति जैसा आम नाम भी चारों में नहीं मिलता। मानव शुल्व सूत्र में कुछ ईंटों के नाम दिए गए हैं जो बहुत ही हैरतअंगेज़ लगते हैं किन्तु इनकी लम्बाई-चौड़ाई नहीं दी गई है। यह तय करना मुश्किल है कि क्या अपस्या, ऋतव्या, चण्ड:, नकुल, प्राणभृत, वैश्वदेवी, विराज और वायव्या आदि नाम की ईंटें प्रचलन में थीं या किसी पुरोहित ने वैसे ही प्रभाव जमाने के लिए ये नाम दे दिए थे।

यदि ऐसी नाम-मात्र की ईंटों को छोड़ दें तो निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं: कम-से-कम 26 ईंट त्रिभुजाकार हैं,19 वर्गाकार हैं, 14 आयताकार हैं, 5 समलम्ब हैं, 2 समान्तर चतुर्भुजाकार हैं तथा एक-एक पंचभुज व समचतुर्भुज (Rhombus) आकार की हैं। वक्रपक्ष व्यस्तपुच्छ श्येन चिति में प्रयुक्त ईंटों को आपस्तम्ब में मात्र संख्याओं से प्रदर्शित किया गया है – प्रथमा, द्वितीया, तृतीया . . . . नवम। प्रथम ईंट 24 × 20 वर्ग अंगुल की है। इस चिति के लिए बहुत कम प्रकार की ईंटों की ज़रूरत पड़ती है तथा इनके नाम स्वयं में स्पष्ट हैं: पक्षमध्यिया, पक्षअग्रीया और पक्षस्तका।

कुछ ईंटों के नाम अलग-अलग हैं किन्तु उनके आकार और आकृति एक ही हैं। जैसे अनूक, चतुर्थी, चत्रुर्भागिया,

तुरीय और षोडशी – ये पांचों वर्गाकार (30×30 वर्ग अंगुल) ईंटें हैं। कुछ नाम तो स्वतः स्पष्ट हैं: चतुर्थी, पंचमी या षष्ठी से तात्पर्य वर्ग की भुजा की लम्बाई (1 पुरुष या 120 अंगुल का चौथाई, पांचवां भाग या छठा भाग) से होता है । किन्तु अष्टमी नाम पेंचदार है। इसका अर्थ होता है वर्गाकार पंचमी ईंट के क्षेत्रफल (24×24 वर्ग अंगुल) का आठवां भाग और किसी आयताकार ईंट के क्षेत्रफल (24×36 वर्ग अंगुल) का आठवां भाग। इन दोनों का उपयोग पक्षीनुमा श्येन चिति (द्वितीय प्रकार) बनाने में होता है। ये दोनों ही आकृति में समकोण त्रिभुजाकार होती हैं। प्रथम का कर्ण 16 अंगुल, 32 तिल और दूसरी का कर्ण 21 अंगुल, 21 तिल होता है। अब एक उभयी ईंट बनाई जाती है। यह एक विषमबाहु त्रिभुज की आकृति की होती है जिसका आधार 30 अंगुल और दो भुजाएं उपरोक्त दो कर्णों के बराबर होती हैं।

षोडशी शब्द भी समस्यामूलक है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है सोलहवां भाग। चतुर्थी, पंचमी और षष्ठी के विपरीत यहां तात्पर्य भुजा की लम्बाई से न होकर ईंट के क्षेत्रफल से है, अर्थात षोडशी ईंट का क्षेत्रफल 900 वर्ग अंगुल (120×120 वर्ग अंगुल/16) होता है। यानी यह और कुछ नहीं चतुर्थी वर्गाकार ईंट (30×30 वर्ग अंगुल) है। आपस्तम्ब में षोडशी से तात्पर्य इसी क्षेत्रफल की समलम्बक ईंट (Trapezium) से है।

कर्ण का वर्ग . . .

ईंटों की बात को यहीं रोकते हैं। अब हम अपनी चर्चा के समापन पर आ चुके हैं। अलबत्ता समापन से पहले हम दो और प्रमेयों पर ध्यान देंगे जो निर्णायक महत्व के हैं। ये प्रमेय निम्नानुसार हैं:

(क) "एक वर्ग पर (अर्थात उसके कर्ण पर) तनी हुई डोरी दुगने आकार का क्षेत्र उत्पन्न करती है।"

(ख) "एक आयत का कर्ण स्वतः वे दोनों क्षेत्र उत्पन्न करता है जो आयत की भुजा अलग-अलग बनाती है।" (अर्थात कर्ण का वर्ग दोनों भुजाओं के वर्गों के योग के बराबर होता है।)

शुल्व सूत्रों में मात्र चतुरस्र को मान्यता दी गई है। इनमें मात्र एक ही प्रकार के त्रिभुज - प्रउग यानी समद्विबाहु त्रिभुज - को ही नाम से प्रस्तुत किया गया है। शब्द तिस्र एक विशेष किस्म की ईंट के संदर्भ में आता है – यह ईंट है समकोण त्रिभुजाकार। मानव शुल्व सूत्र में त्रिकोण की भुजा वक्राकार है। किन्तु त्रिभुज को इंगित करते हुए कोई सामान्य शब्द नहीं है। समकोण त्रिभुज को एक अर्ध-चतुर्भुज

के रूप में ही देखा गया है – यह एक वर्ग (समचतुरस्र) हो सकता है या एक आयत (दीर्घ चतुरस्र) हो सकता है जिसे कर्ण पर से दो भागों में बांट दिया गया है। तो शुल्व सूत्रों में पायथागोरस प्रमेय का उल्लेख दो बार हुआ है : पहली बार एक वर्ग के लिहाज़ से (प्रमेय 'क') और दूसरी बार एक आयत के लिहाज़ से (प्रमेय 'ख')।

इन प्रमेयों के उपयोग के कुछ उदाहरण एक अन्य सूत्र में दिए गए हैं: एक ऐसे आयत के संदर्भ में जिसकी भुजाएं 3 व 4, 15 व 8, 7 व 24, 12 व 35, 15 व 36 हों। यह आप आसानी से देख सकते हैं कि आधार व लम्ब पर बने वर्गों के क्षेत्रफल का जोड़ कर्ण पर बने वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर है:

$3^2 + 4^2 = 5^2$

$15^2 + 8^2 = 17^2$ आदि।

यही प्रमेय आपस्तम्ब और कात्यायन में भी प्रस्तुत हुआ है। बहरहाल यह सिद्ध करने का प्रयास करना निरर्थक है कि तथाकथित पायथागोरस प्रमेय (यूक्लिड के एलिमेन्ट्स की प्रमेय 1.47) ठीक उसी रूप में पायथागोरस (530 ईसा पूर्व) से पहले ही भारत में ज्ञात थी, जैसा कि कुछ भारतीय शोधकर्त्ताओं व शिक्षित लोगों ने दावा किया है। इस निरर्थकता का एक कारण तो यह है कि शुल्व सूत्रों का काल निर्धारण काफी अटकलों पर टिका है और इनका काल 600 ईसा पूर्व से पहले तो नहीं ही हो सकता।

दूसरा कारण यह है कि वैसे भी ये दावे-प्रतिदावे अर्थहीन हो गए हैं क्योंकि यह पता चल गया है कि यह प्रमेय पायथागोरस से भी 1200 वर्ष पूर्व बेबीलोन-वासियों को ज्ञात था।

यदि हम मान भी लें कि शतपथ ब्राह्मण में इस प्रमेय की जानकारी है (जैसा कि साइडनबर्ग दावा करते हैं) तो भी शतपथ ब्राह्मण का काल 1900-1600 ईसा पूर्व तक पीछे तो जा ही नहीं सकता। हम इतना ही कह सकते हैं कि भारत में प्राचीन बेबीलोन व यूनान से स्वतंत्र इस प्रमेय का प्रतिपादन कारीगरों व पुरोहितों के कामकाज से हुआ था।

वृत का वर्ग बनाना

जिस दूसरे प्रमेय का उल्लेख हम करना चाहेंगे, वह निम्नानुसार है:

किसी वृत्त को वर्ग में बदलने के लिए व्यास को आठ बराबर भागों में बांटकर, इनमें से एक भाग को 29 भागों में बाटें; अब इनमें 28 भाग और साथ में बचे हुए एक भाग का छठवां भाग, उसमें से आठवां भाग कम करके, हटा दें।

अर्थात वृत्त के व्यास का

$$1-\frac{1}{8}+\frac{1}{8x29}\quad\frac{1}{8x29x6}\quad\frac{1}{8x29x6x8}$$

भाग उस वर्ग की एक भुजा के बराबर होगा जिसका क्षेत्रफल वृत्त के बराबर है।

इसी कार्य के लिए एक और विधि बताई गई है :

व्यास को 15 भागों में बांटकर 2 भाग हटा दें, ... इस माप में इसके तिहाई भाग की वृद्धि कर दें और इस तिहाई में इसके चौथाई भाग में से चौतीसवां भाग (चौथाई का) कम करके वृद्धि कर दें। अर्थात

$$1+\frac{1}{3}+\frac{1}{3x4}\quad\frac{1}{3x4x34}$$

$$\frac{577}{408}$$

=1.414215686

ऊपर वर्णित पायथागोरस प्रमेय के साथ जोड़कर देखें तो इससे हमें $\sqrt{2}$ का मान मिलता है (यदि हम वर्ग की भुजा एक इकाई ले लें)।

वास्तव में आज उपलब्ध $\sqrt{2}$ के मान (1.414213562.......) के काफी नज़दीक है यह मान।

इससे शायद यह भी स्पष्ट होता है कि क्यों मापन की इकाई अंगुल के 34वें भाग तिल से शुरू होती है। दिक्कत सिर्फ यह है कि हम यह नहीं जानते कि प्राचीन काल में उन लोगों ने $\sqrt{2}$ का मान गणितीय तौर पर कैसे निकाला था। सारे प्राचीन भारतीय गणितज्ञों की एक विशेषता यह थी कि वे गणना के चरणों का उल्लेख नहीं करते थे, मात्र परिणाम बताया करते थे।

निष्कर्ष

शुल्व सूत्रों का अध्ययन प्राचीन भारत में ज्यामिति के प्रथम ग्रन्थों के नाते किया गया है। शुल्व सूत्रों की ओर दुनिया का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय जॉर्ज थिबॉल्ट (1848-1914) को जाता है जिन्होंने बौधायन शुल्व सूत्र का अनुवाद अंग्रेज़ी में किया (1874 से शुरू करके)। इसके अलावा उन्होंने जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (1875) में इस विषय पर एक लेख भी लिखा। शेष शुल्व सूत्रों का अनुवाद इसके बाद बीसवीं सदी में हुआ । इन पर इण्डोलॉजिस्ट व विज्ञान के इतिहास-कारों दोनों ने ही विचार-विमर्श किया है। हम शुल्व सूत्रों के कुछ ऐसे पहलुओं की चर्चा करना चाहेंगे जिन पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया गया है।

1. प्राचीन काल में जो ब्राह्मण पुरोहित बनना चाहते थे, उनसे अपेक्षा होती थी कि वे वैदिक मंत्रों से संबंधित समस्त विषय सीखें। इन संबंधित विषयों का सामान्य नाम वेदांग (अर्थात वेद के अंग) है।

स्वयं शुल्व सूत्र मिस्त्रियों व रथकारों के ज्ञान व अनुभवों का संचित रूप है किन्तु शुल्व ग्रन्थों ने ज्यामिति व मापन संबंधी अध्ययनों का सूत्रपात नहीं किया। एक बार रचे जाने के बाद ये सूत्र गतिहीन हो गए, इनमें आगे कोई विकास नहीं हुआ। इसके लिए पुरोहितों (अध्वर्यु) में रुचि के अभाव को विशेष रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। ये अध्वर्यु ही शुल्व सूत्रों के रखवाले (रिकॉर्ड कीपर) थे।

और इसके कारण खोजना मुश्किल नहीं है। प्राचीन काल में पुरोहित बनने के इच्छुक ब्राह्मणों को सारे वेदांग सीखने होते थे। वेदांग 6 किस्म के थे:

1. शिक्षा – वैदिक मंत्रों को सही ढंग से उच्चारित करने का विज्ञान
2. छन्द
3. व्याकरण
4. निरुक्तः कठिन वैदिक शब्दों के अर्थ
5. ज्योतिषः खगोल अथवा वैदिक पंचांग
6. कल्पः अनुष्ठान

कल्प में कई सूत्रों का समावेश है जो अनुष्ठानों में करणीय व अकरणीय कार्यों की व्यवस्था देते हैं। घरेलू कर्मकाण्ड से संबंधित सूत्र गृह्य सूत्र कहलाते हैं और व्यापक बलि से संबंधित सूत्रों (दर्शपूर्णमास, सोमयोग आदि) को श्रौतसूत्र कहा जाता है। शुल्व सूत्र इन अलग-अलग श्रौतसूत्रों के अंग हैं।

समय बीतने के साथ वेदांग का अध्ययन अनिवार्य न रह गया। पारस्कर गृह्यसूत्र में कहा गया है कि जब कोई छात्र यज्ञ करने की कला सीख जाए तो व्याकरण, खगोल आदि का अध्ययन किए बगैर भी वह समावर्तन (समापन स्नान) कर सकता है।

इन विषयों का संवर्धन शिक्षण के धर्मनिरपेक्ष केन्द्रों पर छोड़ दिया गया था (वैसे यह गौरतलब है कि वेदांगों में कल्प को छोड़कर ऐसा कुछ नहीं है जिसे 'धर्म' या 'पूजनीय' कहा जा सके)। तो छन्द, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त व शिक्षा का अध्ययन पुरोहितों के दायरे से बाहर चलता रहा, फलता-फूलता रहा जबकि ज्यामिति व मापन का अध्ययन थम गया। इसलिए इन दो क्षेत्रों में आगे कोई विकास नहीं हुआ।

2. शुल्व सूत्रों के अध्ययन का महत्व यह नहीं है कि इनसे हमें वैदिक कर्मकाण्ड की जानकारी मिलेगी, बल्कि यह है कि इनसे हमें पता चलता है कि इन कर्मकाण्डों में विज्ञान की कितनी संभावना छिपी थी। जार्ज थिबॉट के युगान्तरकारी शोध के बाद कई शोध-कर्त्ताओं ने शुल्व ग्रन्थों की ज्यामितीय विषय-वस्तु पर ध्यान दिया है। अलबत्ता इनके उचित अध्ययन व विधिवत विश्लेषण से प्राचीन टेक्नॉलॉजी तथा प्रायोगिक व सैद्धांतिक ज्ञान के परस्पर निर्भर विकास के बारे में और पता चलेगा। यह यात्रा सिद्धांत से व्यवहार

की ओर नहीं बल्कि व्यवहार से सिद्धांत की ओर रही है। टेक्नॉलॉजी, विशेषत: ईंट बनाने व बिछाने की टेक्नॉलॉजी ही शुल्व का स्रोत है। इस मायने में शुल्वसूत्र शिल्पशास्त्र के पूर्ववर्त्ती हैं।

3. शुल्व ग्रन्थों में मुख्य शब्द रज्जू (रस्सी) है। रस्सी के एक टुकड़े का उपयोग पैमाने व दिशा निर्धारक दोनों रूपों में करना शुल्व ज्यामिति की विशेषता है। इसमें यदा-कदा बांस की एक छड़ी – वेणु का उपयोग भी होता था। रस्सी से वास्तविक मापन व क्रियाएं इस कार्य का अनिवार्य अंग थीं। अर्थात यह यूक्लिडीय ज्यामिति में पाई जाने वाली स्थान व आकृति की अमूर्त धारणा से सर्वथा भिन्न है। इसमें दिमाग को हाथ का सहारा चाहिए और दिमाग हाथ को सहारा भी देता है।

4. कुछ अध्येताओं ने शुल्व को एक वैज्ञानिक विषय मानने में हिचक दिखाई है या इंकार भी कर दिया है। उनका मत रहा है कि शुल्व पूरी तरह प्रयोग-आधारित (एम्पिरिकल-आनुभविक) है और इसलिए इसे वैज्ञानिक ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। थिबॉट स्वयं इतने शुद्धतावादी (प्लैटोनिक) नहीं थे मगर फिर भी वे इन्हें वैज्ञानिक ग्रंथ बताते हुए थोड़े तो झिझकते हैं। थिबॉट का कहना था कि वे लोग निर्लिप्त भाव से ज्ञान की खोज में नहीं लगे थे किन्तु उनकी ज्यामिति ठीक-ठाक ही है।

इससे संगमरमरी महलों में रहने वाले पंडितों की संवेदनहीनता प्रकट होती है। वे कुलीन वर्ग के साथ जुड़ना पसंद करते हैं और कामगार लोगों को हिकारत के भाव से देखते हैं, गोया वे लोग किसी वैज्ञानिक चीज़ को बनाने में निहित रूप से अक्षम हों। इस रवैये से पंडितों का वर्ग संबंध स्पष्ट हो जाता है। ज़्यादा न भी कहें, तो इसे निंदनीय तो कहना ही होगा।

5. और बात यहीं खत्म नहीं होती। यह पूरा विचार ही बेतुका और अनैतिहासिक है। आज जे. डी. बर्नाल, वी. गॉर्डन चाइल्ड, बी. फैरिंग्टन व अन्य के शोध से यह बात स्थापित हो गई है कि विज्ञान के इतिहास में यह आम बात है कि शुरुआती महान खोजें व आविष्कार तथा उनसे उपजने वाला ज्ञान दिमाग और हाथों के तालमेल का परिणाम था। यह तालमेल (एकता) होमो-इरेक्टस व होमो-सेपिएन्स से होमो-फेबर (सर्जक मानव) के विकास में यह महत्वपूर्ण छलांग थी। वानर के नर बनने में श्रम की भूमिका को फ्रेडरिक एंगेल्स ने बहुत पहले स्पष्ट किया था। हमारे वेद अध्येता इस सबसे बिल्कुल अनभिज्ञ रहे हैं।

6. बहरहाल, जिन पुरोहितों ने कर्मकाण्ड की रचनाओं में ईंट बनाने व बिछाने की कला को शामिल किया उनके योगदान को नकारना उजड्डता कही जाएगी। वे चाहते तो इस कला

को मर जाने देते और छन्दश्चिति और मनोमय चिति से संतुष्ट रहते। साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सूत्रों की कूट शैली व संक्षिप्तता की वजह से टीकाओं की आवश्यकता पड़ती थी और टीकाकार प्रायः खुद नहीं समझ पाते थे कि सूत्र में कहा क्या गया है। यह विज्ञान के मार्ग में सहायक न होकर रोड़ा बन जाता है।

7. शुल्व में कोई निरन्तरता नहीं रही क्योंकि वैदिक यज्ञ बहुत महंगे होने के कारण धीरे-धीरे चलन में न रहे और उनका स्थान पूजा व भक्ति ने ले लिया। भारत में ज्यामिति का पुनर्जन्म खगोलविदों के हाथों हुआ।

अर्थात जिस तरह से एक समय पर इसका विकास कर्मकाण्ड के सहचर के रूप में हुआ था उसी प्रकार से, आगे चलकर इसका विकास खगोल-शास्त्र के सहचर के रूप में हुआ। इसे एक स्वतंत्र विषय के रूप में कभी प्रोत्साहित नहीं किया गया। आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर के साथ ज्यामिति धरती से उठकर आकाश में पहुंच गई और इसका शुल्व से लगभग कोई नाता न रहा।

आर्यभट् (जन्म 476 ईस्वी) और शुल्व सूत्र (600 ईसा पूर्व से बाद नहीं) के बीच एक लम्बा अन्तराल है। और स्मरणीय है कि आर्यभट वेदांग-पश्चात खगोल शास्त्रियों में प्रथम नहीं थे। आर्यभट के पूर्ववर्त्ती ज़रूर रहे होंगे मगर उनकी रचनाएं गुम हो गई हैं। हम नहीं जानते कि आर्यभट ने शुल्वसूत्रों का अध्ययन किया था या नहीं। ऐसा बताया जाता है कि ब्रह्मगुप्त (जन्म 598 ईस्वी) ने 4 वर्ष वेदों का अध्ययन किया था। सम्भव है उन्होंने वेदांगों का भी अध्ययन किया हो किन्तु उनकी रचनाओं में प्रयुक्त शब्दावली पर शुल्व सूत्रों का कोई असर नहीं दिखता । यही बात भास्कर द्वितीय (12 वीं सदी) के बारे में भी कही जा सकती है। भास्कर द्वितीय हमारे अन्तिम महान खगोलशास्त्री थे।

इसलिए सरस्वती अम्मा के इस निष्कर्ष से सहमत होना मुश्किल है कि शुल्व और बाद की ज्यामिति के बीच निरन्तरता है। वे स्वयं अपनी पुस्तक में स्वीकार करती हैं कि आर्यभट द्वितीय तथा भास्कर द्वितीय जिन घरानों के थे उनमें ज्यामितिय ज्ञान के साथ निरन्तरता का अभाव था। यह बात समस्त वेदांग-पश्चात खगोलशास्त्रियों व ज्यामिति विदों के बारे में सही है।

8. शुल्व ग्रन्थ ज्यामिति व मापन की एक व्यवस्थित कार्य पुस्तक प्रदान नहीं करते। समस्त प्रमेय पूर्व-निर्धारित कर्मकाण्डों की ज़रूरतों की पूर्त्ति के लिहाज़ से रचे गए हैं। ऐसा लगता है कि इन प्रमेयों को आगे बढ़ाने या उनका अगला तार्किक चरण खोजने

की कोई जिज्ञासा मौजूद नहीं थी। यदि विज्ञान को पुरोहितों के भरोसे छोड़ा जाएगा, तो यही होना है। अपने व्यवसाय के लिए अनावश्यक विषय को आगे बढ़ाने की अपेक्षा उनसे नहीं की जा सकती । लिहाज़ा समस्त शुल्व सूत्र वैज्ञानिक रचनाओं के हिसाब से कुछ हद तक अव्यवस्थित व बेडौल से हैं।

9. अलबत्ता जो भी कहें मगर शुल्व सूत्र पठनीय ग्रन्थ हैं। इन्हें कर्मकाण्डों से स्वतंत्र पढ़ा जा सकता है। ये जानकारी के खज़ाने हैं तथा इनका विस्तृत व बारीक विश्लेषण किया जाना चाहिए।

रामकृष्ण भट्टाचार्य: आनंद मोहन कॉलेज, कलकत्ता के अंग्रेज़ी विभाग में रीडर तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम में अतिथि लेक्चरर। विज्ञान लेखन में रुचि।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम से जुड़े हैं। साथ ही स्वतंत्र रूप से विज्ञान लेखन एवं अनुवाद करते हैं।

आभार: उन सभी पूर्ववर्ती विद्वानों का आभार जिन्होंने शुल्व सूत्रों का अनुवाद एवं संपादन किया है क्योंकि उन मार्गदर्शकों के बगैर इस लेख को लिख पाना संभव नहीं था।

इस लेखमाला को तैयार करने में रामकृष्ण भट्टाचार्य की मदद करने वालों में हैं – सर्वश्री प्रसुन कुमार बेरा, रिंकु चौधुरी, शुभ्रा दत्ता, सिद्धार्थ दत्ता, सायक देव, प्रद्योत कुमार बाइटि, अमिताभ भट्टाचार्य और रुद्रजीत भट्टाचार्य के नाम प्रमुख हैं। रामकृष्ण जी इन सभी के प्रति हृदय से आभारी हैं।